सिंचाई

सामान्य वर्षा होने पर सिंचाई की आवश्यकता नहीं होती किन्तु वर्षा न होने पर माह में एक बार आवश्यक है। समय - समय पर खरपतवार को निकालते रहने से कंदों में वृद्धि अच्छी होती है परंतु ध्यान रहे कि पौधा टूटने न पाये।

फूल व फल

फूल अगस्त - सितंबर व फल अक्टूबर-नवंबर में प्राप्त होते हैं।

फसल विदोहन

170-180 दिनों के बाद अधपके फल जो हल्के रंगे के हो जाते हैं को तोड़कर छाया में 10-15 दिन तक सुखाना चाहिये व फलों से बीज एवं छिल्का अलग कर लेना चाहिये। बोरों में नमी से बचाकर संग्रहित करना चाहिये। कलिहारी के कंद 5-6 साल में परिपक्व होते हैं। इस बीच हम बीज एवं छिल्का एकत्र कर सकते हैं। 5-6 साल में जब कंद निकालें तो उन्हें अच्छी तरह धो लें तथा सुखाने के पहले छोटे-छोटे टुकड़े कर लें।

फसल प्राप्ति एवं आर्थिकी

5 वर्ष तक छिल्के व बीज का उत्पादन प्राप्त होता है जो कि लगभग 250-300 किलो बीज तथा 150-200 किलो छिल्के के रूप में प्राप्त होता है। पांचवे वर्ष में 2.5-3 टन सूखे कंद प्राप्त होते हैं।

विक्रय मूल्य

बीज	-	रु. 300/किलो
छिलके	-	रु. 150/किलो
कंद	-	रु. 35/ किलो
व्यय	-	लगभग रु. 1,00,000 (मात्र प्रथम वर्ष में)
बीज से	-	रु. 82, 500
छिलकों से	-	रु. 26,250
कंद से	-	रु. 96,250
कुल	-	2,05,000
लाभ	-	रु. 1,05,000/हेक्टे.

•••

एस.एफ.आर.आई. प्रचार पत्रिका - 23

कलिहारी

(ग्लोरिओसा सुपरबा)

जैव विविधता एवं
औषधी पौध शाला

म.प्र. राज्य वन अनुसंधान
संस्थान, जबलपुर

2001

कलिहारी
(ग्लोरिओसा सुपरबा)

लिलिएसी कुल का यह पौधा अत्यंत औषधीय महत्व युक्त है। सुन्दर, बहुवर्षीय, आरोही लता के रूप में पाया जाता है। इसे 'अग्निशिखा' के नाम से भी जाना जाता है। कलिहारी गर्भनुत, उल्ट-चंडाल, विशल्या, सपुर्व, लिली व मालाबार ग्लोरी लिली आदि नामों से भी जाना जाता है। कलिहारी समस्त भारत में 6000 फुट की ऊँचाई तक तथा वर्मा, श्रीलंका, मलाया, चीन एवं अफ्रिका में उत्पन्न होती है। मध्यप्रदेश में यह साल-सागौन एवं मिश्रित वनों में खुले स्थानों, गांवों के आसपास, खेतों की मेड़ों पर अधिकांशतः पाया जाता है। अत्यधिक औषधीय पौध उत्पादों का संग्रहण एवं प्राकृतिक भंडार से, सतत् विदोहन होने के कारण कलिहारी भी वनों से प्रायः लुप्त हो रही है। आजकल व्यवसायिक रूप से इसकी खेती कई स्थानों में की जा रही है। विश्व स्वास्थ्य संगठन ने कलिहारी से बनने वाली औषधियों को आधुनिक चिकित्सा में शामिल करने की अनुशंसा की है।

आकारिकी (मॉरफोलाजी)

यह लगभग 15 से 20 फुट लंबी आरोही, कंदवत लता है। पत्तियाँ वृंत रहित लट्वाकार, भालाकार, 6-8 इंच लंबे तथा 1, 1/2 इंच चौड़े व नोक पर सूत्रकार घुमावदार होते हैं जो आरोहण में सहायक होते हैं। पुष्प लाल रंग के आकर्षक, एकल या गुच्छबद्ध होते हैं। फल 2 इंच तक लंबे, तीन लंबी धारी युक्त, कुष्ठित शीर्ष जो अंदर तीन कोष्ठों में विभक्त होते हैं इनके अंदर 20 तक बीज होते हैं।

औषधीय गुण एवं उपयोगी भाग

इसके कंदों, फलों व बीजों में 0.2 से 0.3 प्रतिशत कोल्चिसिन व ग्लोरिआसन क्षाराभ द्रव्य, सुगंधित तेल, बेन्जोइक अम्ल, सेलीसिलिक एसिड, कोकीन, शर्करा, वसाम्ल तथा कुछ रालीय पदार्थ पाये जाते हैं। जिसके कारण इसके कंद, फल, बीजों की अत्याधिक मांग है। कोल्चिसिन का उपयोग शेथ, कण्डमाल, गठिया या वात, वेदना, कुष्ट एवं अर्श में टॉनिक के रूप में तथा मूढ़-गर्भपातन में किया जाता है।

कृषि तकनीक

कलिहारी के लिये उष्ण व नम जलवायु खेती के लिये 6-7 पी.एच. मान युक्त बालुई दोमट मिट्टी जिसमें अच्छी जल निकासी हो तथा पथरीली, बंजर भूमि भी उपयुक्त होती है। खेत की तैयारी ग्रीष्म ऋतु मे गहरी जुताई करके (प्रति हेक्ट. 15 टन गोबर खाद, 125 किलो नत्रजन, 75 किलो पोटाश व 50 किलो स्फुर मिला देनी चाहिये) 60 x 60 सेमी. की क्यारियां एवं नालियां बनाकर क्यारियों में कंदों को रोपित करके बिजाई की जाती है। कलिहारी के पौधे बीजों को नर्सरी में बोकर तथा पौध तैयार करके रोपित किये जा सकते हैं। परंतु यदि इनकी बिजाई ऐसे कंदों से की जाय जिनका वजन 40-50 ग्राम हो तो उनके रोपण वर्ष में ही फल व बीज प्राप्त कर सकते हैं। वर्षा ऋतु में मेड़ों पर 60 सेमी. x 60 सेमी. कतार से कतार व 45 सेमी. कंद से कंद की दूरी रख, 3-6 इंच गहरा कंद को लगाते हैं साथ में बेला चढ़ाने के लिये सूखी झाड़ियां या डाल भी लगा देते हैं। इस तरह प्रति हेक्टेयर 2 से 3 टन कंद या 41500 कंद रोपण हेतु आवश्यक होते हैं।